मजदूरों की मांजी, पेरिन दाजी : यादों की रोशनी में...

91 साल की उम्र में वरिष्ठ साम्यवादी नेत्री श्रीमती पेरिन होमी दाजी का निधन हुआ। पेरिन दाजी कामरेड होमी दाजी की पत्नी थीं- जो कम्युनिस्ट पार्टी के सांसद भी रह चुके थे और श्रमिक आन्दोलन के अग्रणी नेता थे। उनके साथ वह भी समाजसेवा और मजदूर आंदोलन में बराबरी से हिस्सेदारी करती रहीं। कामरेड होमी दाजी के देहान्त के बाद भी वह आन्दोलनों में सक्रिय रहीं थी।

कामरेड पेरिन के अपने जज्बे, अपनी जीजीविषा की भी अलग कहानी है, जो अपनी जिन्दगी की तमाम त्रासदियों के बावजूद- उनका बेटा एवं बेटी उनके सामने ही गुजर गए- मजबूती से खड़ी रहीं, जिन्दगी से किसी भी वजह से कभी मायूस नहीं हुईं और अस्सी साल की उम्र में भी हड़ताली कर्मचारियों के हक में बस के आगे खड़े होने के लिए उसे रोकने के लिए भी तैयार रहती रहीं। विगत ढाई दशक के अधिक समय से बन्द पड़ी हुकुमचन्द मिल के पांच हजार से अधिक कामगारों की 229 करोड़ की बकाया राशि दिलाने के लिए उन्होंने इंदौर के तमाम नागरिकों, विधायकों, सांसदों, राजनीतिक पार्टियों, सामाजिक संगठनों से अपील भी की थी।

कामरेड विनीत तिवारी ने अपने फेसबुक वॉल पर लिखा है

'कि मर के भी ही किसी को याद आएँगे
किसी के आंसुओं में मुस्कराएँगे...

ये गाना गाते हुए बीच में रोककर हमेशा पूछती थीं
याद आएँगे कि नहीं ?'

यहां प्रस्तुत है उनकी लिखी एकमात्र किताब 'यादों की रोशनी में' (2011) की समीक्षा, जो लौकिक अर्थों में होमी दाजी की जीवनी नहीं है, वह पेरिन के अपने जज्बे, अपनी जीजीविषा की भी कहानी है।

एक यादगार दौर की दास्तां

हिन्दी किताबों के प्रकाशनों की भुलभुलैया में- जहां सम्पन्नता की नयी ऊंचाइयां लांघ रहे प्रकाशक किताबों के न बिकने की बात अक्सर दोहराते रहते हैं- पिछले दिनों एक किताब ने 'धूम' मचा दी। यह अलग बात है कि मुख्यधारा की कही जानेवाली मीडिया या पत्रिकाओं में इसके बारे में कोई चर्चा सुनाई नहीं दी।

दिलचस्प बात थी कि न यह किताब किसी 'सेलेब्रिटी' द्वारा लिखी गयी थी, ना उसकी किसी अंग्रेजी कृति का भोंडा अनुवाद थी, न किसी मार्केटिंग गुरू कहे जा सकने वाले प्रकाशक ने उसका प्रकाशन किया था और न ही उसका विषय इन दिनों फैशनेबल कहे जा सकने वाले किसी मुद्दे पर केन्द्रित था। इसके बावजूद किताब के एक हजार प्रिन्ट का पहला संस्करण प्रकाशन के माह में ही समाप्त हुआ (अक्तूबर 2011)। दूसरा संस्करण अगले माह आया और अब सुना है कि प्रस्तुत किताब के कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी बात चल रही है।

'यादों की रोशनी में' शीर्षक यह किताब आजादी के बाद नयी बुलन्दियों पर पहुंचे मेहनतकशों के आन्दोलन की एक अज़ीम शख्सियत कामरेड होमी दाजी पर केन्द्रित है, जिसको उनकी जीवनसंगिनी पेरिन दाजी ने शब्दबद्ध किया है और जिसका रंगपिच्चीकार (बकौल पेरिन) अर्थात सम्पादन मित्रवर विनीत तिवारी ने किया है, जो खुद वाम आन्दोलन के ऐक्टिविस्ट हैं।

image.png
अगर जीवनी के मायने यही हों कि व्यक्ति की जिन्दगी के तमाम ब्यौरों को सिलसिलेवार पेश किया जाए, तो निश्चित ही यह लौकिक अर्थों में होमी दाजी की जीवनी नहीं है, उनकी जिन्दगी की तमाम अहम घटनाओं का उल्लेख इसमें अवश्य है, मगर वह पेरिन के अपने जज्बे, अपनी जीजीविषा की भी कहानी है, जो अपनी जिन्दगी की तमाम त्रासदियों के बावजूद- उनका बेटा एवं बेटी उनके सामने ही गुजर गए- आज भी मजबूती से खड़ी हैं, जिन्दगी से किसी भी वजह से मायूस नहीं है और 78 साल की उम्र में हड़ताली कर्मचारियों के हक में बस के आगे खड़े होने के लिए उसे रोकने के लिए भी तैयार हैं। साथ ही साथ वह होमी एवं पेरिन के जीवन में किसी न किसी मुकाम पर कदम रखे तमाम अन्य लोगों के बारे में भी अवगत कराती है।

सबसे पहले तो वह हीरालाल उर्फ राजाबाबू से मिलाती है जिन्हें इस किताब को समर्पित किया गया है, जिनके कहने से एक तरह से पेरिन ने दाजी पर केन्द्रित इस किताब को लिखना शुरू किया। दाजी के दफ्तर के सामने "…जूते-चप्पल मरम्मत करने की छोटी सी गुमटी थी हीरालाल की…।" जब भी वह मिलता कहता कि आप दाजी की जीवनी जरूर लिखो ताकि लोगों को उनके बारे में पता चल सके कि वह कितने असाधारण इन्सान थे।समर्पण में पेरिन यह भी लिखती हैं कि '28 जुलाई 2010, आज जैसे ही मैंने किताब पूरी की, मैं तेज चल कर हीरालाल की गुमटी पर गयी।..वहां कोई नहीं था।.. कुछ दिन पहले ही वह नहीं रहा।'

एक अर्थ में कहें तो वह वाम राजनीति के यादगार दौर की दास्तां है, जिसे पेरिन ने होमी के बहाने देखना शुरू किया। पेरिन, जिन्होंने 21 साल की उम्र में होमी के साथ विवाह रचाया। '21 मई 1950 …इतना खूबसूरत दिन मेरी ज़िन्दगी में कभी नहीं आया… आसमान में दिखनेवाला पहला तारा ही शादी का मूहूर्त होता है। हमारे पारसी समाज में यही रिवाज है। और फिर मई महीने की ही 2009 की 14 तारीख़… सुबह सात बजे वह मजबूत जकड़ मुझे हमेशा-हमेशा के लिए इस दुनिया में अकेला छोड़ कर ढीली पड़ गई। मेरी जिन्दगी तो मानो उसी पल से रूक गई।'

किताब के अपने सम्पादकीय 'जरूरी है ऐसे लोगों का दुनिया में होना' में विनीत ठीक ही लिखते हैं: 'ये

किताब एक अहसास है उस राजनीति को फिर से सुर्खरू चमकाने की जरूरत का, जिसकी चिन्ता के केन्द्र में वे हैं जो मेहनत करते हैं, पसीना बहाते हैं और इस दुनिया को रोज़-रोज़ मिट्टी, राख, पसीने और खून से बिना थके बेहतर बनाने की कोशिश करते जाते हैं।'

किताब की शुरूआत होती है एक सम्पन्न पारसी उद्योगपति परिवार में 5 सितम्बर 1926 को जन्मे होमी दाजी के किस्से से, जिनका परिवार तीस के दशक की भीषण मंदी में सब कुछ गंवा बैठा और रूई के धंधेवाले उनके पिता- जिन्हें लोग कॉटन किंग के नाम से जानते थे- किसी अलसुबह इन्दौर पहुंचे वहां सिंगर मशीन की दुकान के मैनेजर बनने के लिए। निश्चित तौर पर उस वक्त किसी को उस समय यह पता नहीं था कि 10 साल का होमी एक दिन इन्दौर की पहचान बनेगा। तीसरी या चौथी कक्षा में उन दिनों सेन्ट रेफिएल स्कूल में पढ़ रही पेरिन ने दाजी को पहली बार देखा था जब वह भी उसी स्कूल में पढ़ रहे थे और अध्यापक के गलत निर्देश की मुखालिफत कर रहे थे।

होमी दाजी का बचपन कठिनाइयों में बीता। आर्थिक तंगी के चलते स्कूल में से उनका नाम कटवा दिया गया था। पेरिन लिखती हैं कि 'ऐसी जिन्दगी के बीच दाजी छोटी उम्र में ही इन्सान द्वारा इन्सान के शोषण के बहुत सारे चेहरों को पहचानने लगे थे।' प्राइवेट विद्यार्थी के तौर पर उन्होंने पढ़ाई जारी रखी थी और मैट्रिक पास किया था। कालेज के दिनों में वह राजनीति में भी सक्रिय होते गए, टयूशन भी करते रहे और जेल भी कई बार गए। इसी दौर में उनका सम्पर्क कामरेड अनन्त लागू, कामरेड लक्ष्मण खण्डकर व कामरेड सरमंडल से हुआ और उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता ली। बीए के प्रथम वर्ष से लेकर एमए फाइनल या एलएलबी तक वह हमेशा अव्वल दर्जे में पास होते रहे। एमए फाइनल में तो वह पूरे आगरा विश्वविद्यालय में दूसरे स्थान पर रहे।

पेरिन एवं होमी की शादी का किस्सा भी दिलचस्प है। 'असल में तो हमने शादी भाग कर ही की थी लेकिन मां बाप से भाग कर नहीं। हम तो मां-बाप, भाई-बहन, रिश्तेदारों सबको लेकर भागे थे। हुआ ये था कि हमारी शादी के समय दाजी इन्दौर में पुलिस और सरकार की नज़र में अपराधी थे। आज़ादी के बाद भी कांग्रेस सरकार के साथ कम्युनिस्ट पार्टी और एटक के अनेक विवाद थे। अब अगर इन्दौर में शादी करते तो बहुत मुमकिन था कि मेरे दूल्हे को शादी के मंडप से ही पुलिस उठा ले जाती। इसलिए हमने तय किया कि हम शादी उड्वाडा जाकर करें। वह मुम्बई के पास है और पारसियों का तीर्थस्थान है।'

एलएलबी के बाद होमी ने वकालत शुरू की थी। मजदूरों के केस को वह मुफ्त ही लड़ते थे। बाद में उनकी वक्तृत्व क्षमता और जनान्दोलनों में भागीदारी के चलते बढ़ती पहचान को देखते हुए पार्टी ने उन्हें इन्दौर के कपड़ा मिलों में काम कर रहे तीस हजार से अधिक मजदूरों के नेतृत्व की जिम्मेदारी दी। सन 1957 में महज 31 साल की उम्र में वह मध्य प्रदेश विधानसभा के सदस्य के तौर पर निर्वाचित हुए। मजदूरों ने खुद उनके चुनाव में जमानत के पैसे इकट्ठे किए थे। ये सिलसिला यहां रूका नहीं। उनके कामों को देखते हुए वर्ष 1962 में वह लोकसभा चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशी रामसिंह को हरा कर सांसद बने।

सांसद बन कर दिल्ली जाने से पहले राजवाड़ा के जनता चौक पर एक विशाल मीटिंग में उन्होंने कहा

कि- "... मैं आपका चौकीदार बन कर जा रहा हूं और आप के साथ किसी भी प्रकार का अन्याय या बेइंसाफी होगी, तो मैं उसे कत्तई बर्दाश्त नहीं करूंगा।" पेरिन लिखती हैं कि 'अपना यह वादा दाजी ने संसद से लेकर सड़कों तक हमेशा निभाया। आखिरी सांस तक वह ग़रीबों के लिए लड़ते रहे।'

किताब में पेरिन राष्ट्रपति भवन की अपनी यात्रा का, वर्तमान एवं निवर्तमान राष्ट्रपतियों- डॉ. राधाकृष्णन, राजेन्द्र प्रसाद से मुलाकात का तथा उसी चहल पहल में जवाहरलाल नेहरू से मुलाकात का भी जिक्र करती हैं। इन्दौर में अचानक शुरू हुई हड़ताल के कारण दाजी को वहां लौटना पड़ा था और फिर इस कार्यक्रम में पेरिन अकेले ही पहुंच पायी थीं। नेहरू को जब बताया गया कि आप युवा सांसद होमी दाजी की पत्नी हैं तो नेहरू ने 'ब्रिलिएण्ट बॉय' कह कर होमी की तारीफ की थी और कहा था- "पता नहीं यह लड़का कहां कहां से चीज़े ढूंढ कर लाता है और हमसे पार्लियामेन्ट में इतने सवाल करता है कि मुश्किल हो जाती है।"

मजदूरों के हक के लिए दाजी की कई कामयाब भूख हड़तालों की चर्चा करते हुए पेरिन दोनों के बीच इस मसले पर कायम एक 'शर्त' को भी उजागर करती हैं। वह लिखती हैं: "मैंने शादी के पहले उनसे एक ही शर्त रखी थी। मैंने कहा था कि मैं ज़िन्दगी भर आप के साथ कंधे से कंधा मिला कर चलूंगी लेकिन मेरी शर्त यह थी कि मुझसे भूख हड़ताल करने के लिए कभी मत कहिएगा। मैं किसी भी हालत में भूखी नहीं रह सकती।"

अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए हुकुमचन्द मिल के गेट पर की लम्बी भूख हड़ताल के बारे में वह लिखती हैं कि किस तरह 17वें दिन उन्हें खून की उल्टियां होने लगी थीं। वह बेहोश भी हुए थे मगर उन्होंने डॉक्टर बुलाने से मना किया। उनका तर्क था कि डॉक्टर फोर्स फीडिंग कराएंगे और मेरी "इतने दिनों की मेहनत मिट्टी में मिल जाएगी।" अपने कामरेड्स से ही उन्होंने ठंडे पानी की पट्टियां रखवायीं और पैरों के तलुवों पर घी लगा कर तांबे के कटोरे से रगड़ने को कहा। शाम तक वह ठीक हो गए।

अपने जीवन की अन्तिम भूख हड़ताल दाजी ने उस वक्त की थी जब वह गम्भीर रूप से बीमार थे। "30 अप्रैल 2009 को क्या हुआ कि दाजी ने सुबह से ही खुराक लेना बन्द कर दिया... मुझे लगा कि बार-बार बीमारी और अपनी अशक्तता से वे तंग आ चुके हैं और उन्होंने शायद मन ही मन दुनिया छोड़ने का फैसला कर लिया है, लेकिन वे बड़ी कठिनाई से बोले "मैं कोई ऐसे मरनेवाला नहीं हूं। मैं एक कम्युनिस्ट हूं। मैं कभी आत्महत्या नहीं करूंगा।" पेरिन को बातचीत में पता चला कि इन्दौर नगर निगम ने फेरीवालों और ठेलेवालों पर जो कार्रवाई की थी उसका विरोध करने के लिए उनकी यह हड़ताल है। जब पेरिन ने उनसे यह कहा कि मैं आपको उनके पास ले चलती हूं। घर पर अगर भूखे रहेंगे तो किसे पता चलेगा ? इसके जवाब में उन्होंने कहा कि मैं लड़नेवाले लोगों के बीच बीमार और असहाय बन कर नहीं जाना चाहता। "मैं जानता हूं कि इससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ेगा, लेकिन ये सब चलता रहे और मैं चुपचाप लकड़ी के लट्ठे की माफिक यहां पड़ा रहूं, तो मुझे अपनी नज़रों में फर्क पड़ता है।"

पेरिन-होमी को अपने जीते जी अपनी दोनों सन्तानों को जो खोना पड़ा उसकी भी चर्चा है। बेटा रूसी जो दाजी के राजनीतिक कामों में भी साथ रहता था और वकालत करने लगा था, उसकी मृत्यु पेट के

अल्सर से हुई (1992)। यह वही साल था जब ब्रेन हेमरेज के चलते दाजी का अपना इलाज चल रहा था। बेटी रोशनी जिसने मास्को से डाक्टरी की पढ़ाई की थी और रूसी के गुजर जाने के बाद दोनों की देखभाल करती थी, उसे 2002 में कैन्सर ने उनसे छीन लिया।

किताब में कई सारे अन्य विवरण हैं जिनसे हम होमी दाजी जैसी शख्सियत के बारे में अधिक जान सकते हैं जिनमें 'वक़्त का पूरा दौर समाया होता है।' होमी दाजी का संघर्ष के साथ निर्माण पर भी किस तरह जोर देते थे, उसकी चर्चा 'संघर्ष में शामिल है निर्माण' में की गयी है। दाजी ने अपने साथियों और मजदूरों के साथ मिल कर मजदूरों की रिहायश के लिए दो कालोनियां बसायीं। कम्युनिस्ट पार्टी के भवन भी मजदूरों से चन्दा इकट्ठा कर बनाए। परदेशीपुरा चौराहे पर बने भवन का नाम रखा गया 'मजदूर भवन' तो राजकुमार मिल रेलवे क्रासिंग के पास बने भवन का नाम रखा गया 'शहीद भवन'। दाजी की अन्तिम यात्रा इसी शहीद भवन से निकाली गयी।

यादों की रोशनी के मकसद के बारे में पेरिन बिल्कुल स्पष्ट हैं: "उन यादों को लिखने से मुझे भी उन यादों में दाजी के साथ थोड़ा और जी लेने का वक्त और सामान मिल जाएगा। और अगर गुज़रे कल से आने वाली रोशनी का कोई क़तरा आज की नौजवान या आने वाली पीढ़ी में किसी के ऊपर गिरे, और कोई उस मकसद व उन उसूलों को समझ उन पर चलने की कोशिश करे तो लगेगा कि मेरी मेहनत ज़ाया नहीं हुई।"

वे सभी जो मौजूदा विषमतापरक व्यवस्था से उद्विग्न हैं, मगर आज भी पुरयकीं हैं कि चीज़ों को बदला जा सकता हैं; वे सभी जो कम्युनिस्ट आन्दोलन में पड़ी दरारों से चिन्तित हैं, मगर कामरेड भगवानभाई बाग़ी के चर्चित गाने 'जान की इसपे बाजी लगाना, अपना झंडा न नीचे झुकाना' के बारे में संकल्पबद्ध हैं, उन सभी को इस किताब को जरूर पढ़ना चाहिए। निश्चित ही उन्हें इस किताब में आन्दोलन की मौजूदा हालात का या उसके अतीत का कोई विश्लेषण नहीं मिलेगा, मगर यह क्या कम है कि हम उस 'गौरवशाली दौर की झलकियों' से रूबरू हों, जब 'मेहनतकश लोगों ने सारी दुनिया के भीतर अपना हिस्सा, हक़ की तरह हासिल किया था।'

पुस्तक परिचय : यादों की रोशनी में
लेखक : पेरिन दाजी
सम्पादन : विनीत तिवारी
प्रकाशक : भारतीय महिला फेडरेशन, 1002 अंसल भवन, 16 कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली 110001 तथा प्रगतिशील लेखक संघ, 163, महादेव तोतला नगर, बंगाली चौराहे के पास, रिंग रोड, इन्दौर 452018
मूल्य : 60 रूपए
(साभार- http://www.mediavigil.com और कथादेश से)